ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 64-66

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

युग दृष्टा पं0 दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिन्तन : भारत के परिप्रेक्ष्य में

जान्हवी प्रसाद

असि0 प्रोफे0–समाजशास्त्र विभाग, पं0 जवाहर लाल नेहरू पी.जी. कालेज, बांदा (उ0प्र0) भारत

Received- 30.08.2019, Revised- 06.09.2019, Accepted - 11.09.2019 E-mail: mk80.singh@gmail.com

सारांश : *प्रस्तुत शोध पत्र का मूल उद्देश्य 'पं0 दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक विचार' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक विचार वास्तविकता पर अवलम्बित है। वे मनुष्य–मनुष्य के मध्य दिखावटी सम्बन्धों के नाते संतुष्ट नहीं थे वरन् मनुष्य की मनुजता से प्रसन्नचित थे। उनका मानना था कि जहाँ एक तरफ शोषण हो, गरीबी हो, भुखमरी हो, और दूसरी तरफ अर्थतंत्र का एकाधिकार हो, वहाँ मनुष्य–मनुष्य के मध्य किसी भी प्रकार का सम्बन्ध बेमानी प्रतीत होता है। इस प्रकार की आर्थिक विषमता को दूर कर ही व्यक्ति को उसका सम्मान व प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है। पाश्चात्य विचारकों ने इस सामाजिक व आर्थिक विषमता से क्षुब्ध होकर इस पर अनेक प्रहार किये और इसकी समाप्ति हेतु अनेक मार्ग सुझाए।*

भारतीय विचारकों ने भी इस विषमता का पाश्चात्य दृष्टिकोण का अध्ययन कर इसकी समाप्ति का नूतन मार्ग सुझाए, किन्तु समस्त चिंतन एकांगी सिद्ध हुए क्योंकि किसी भी विचारक ने भारत की मिट्टी को समझने का प्रयास नहीं किया। प्रत्येक देश व समाज की अपनी विशेष ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ होती है। उस समय उस देश के नेतृत्वकर्त्ता व विचारक ही उस परिस्थिति में देश को अग्रेतर अभिवृद्धि का कार्य करते हुए समस्या के समाधान का जो हल उन्होंने सुझायें, वे भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में रहने वाले समाज पर पूर्णतः लागू नहीं होते।

कुंजी शब्द – मनुजता, पोषण, गरीबी, भुखमरी, अर्थतंत्र, आर्थिक विषमता, सामाजिक, अग्रेतर अभिवृद्धि।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने अर्थनीति की विवेचना करते हुए कहा है कि, "अर्थ (सम्पत्ति) के अभाव व प्रभाव दोनों से समान जीवन को मुक्त रखकर सामाजिक अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति के बारे में एक योग्य व्यवस्था निर्मित करने को भारतीय संस्कृति में अर्थायाम कहा गया है।"1 पं0 दीनदयाल जी का यह मानना है कि ''जिस प्रकार 'प्राणायाम' मनुष्य के स्वास्थ्य हेतु हितकारी है, उसी प्रकार 'अर्थायाम' देश की अर्थव्यवस्था हेतु आवश्यक है।''2

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी अर्थनीति के क्षेत्र में पाश्चात्य का अन्धानुकरण को गलत मानते थे। अतः हमें अपने 'अर्थनीति का भारतीयकरण' करना होगा। पं0 दीनदयाल उपाध्याय अपने इस मन्तव्य को विवेचित करते हुए लिखा है कि "देश का दारिद्रय दूर होना चाहिए, इसमें दो मत नहीं; किन्तु प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह गरीबी कैसे दूर हो? हम अमेरिका के मार्ग पर चले या रूस के मार्ग को अपनावें या यूरोपीय देशों का अनुकरण करे? हमें इस बात को समझना होगा कि इन देशों की अर्थव्यवस्था में अन्य कितने भी भेद क्यों न हो इनमें एक मौलिक साम्य है। सभी ने मशीनों को ही आर्थिक प्रगति का साधन माना है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि भारत की आर्थिक प्रगति का रास्ता मशीन का रास्ता नहीं है। .....कुटीर उद्योगों को भारतीय अर्थनीति का आधार मानकर विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विकास करने से ही देश की आर्थिक प्रगति सम्भव है।''3

पं0 दीनदयाल उपाध्याय पश्चिम की विचार सारिणी से उत्पन्न व्यक्तिवाद के लोकतंत्रीय पक्ष के समर्थक है; लेकिन पूँजीवाद को व्यक्तिवाद की विकृति मानते है। उन्मुक्त आर्थिक स्पर्धा पूँजीवाद का आधार है। स्पर्धा–स्वातंत्र्य को ही पूँजीवादी लोग व्यक्ति–स्वातंत्र्य कहते है; लेकिन पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी इससे पूर्णतः असहमत है। उनका मानना है कि, "कहा जाता है कि स्वतंत्र एवं प्रतिस्पर्धी–पण, व्यक्ति को उपभोग की स्वतंत्रता प्रदान करता है। (यह सही नहीं है)..... विरोधियों (स्पर्धियों) के समाप्त होने पर एक या कुछ उत्पादकों का उस क्षेत्र में एकाधिपत्य हो जाता है तो वे उपभोक्ता से उसके प्रजातंत्रीय अधिकारों को छीन लेते है। फिर मूल्य, माँग और पूर्ति के नियमों से तय न होकर उत्पादकों की अपनी इच्छा और योजना से तय होता है। आर्थिक क्षेत्र में यह एक प्रकार का 'डिक्टेटरशिप' है। अतः यह आवश्यक है कि उत्पादन के सामर्थ्य की मर्यादा निश्चित की जाए, जो कि विकेन्द्रीकरण से ही सम्भव है।''4 पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी कुछ व्यक्तियों के हाथों में असीमित उत्पादन के सामर्थ्य के केन्द्रीकरण के प्रवल विरोधी है।

वे बुराई का वास्तविक कारण व्यवस्था को नही, अपितु मनुष्य को मानते है। क्योंकि हमारा ध्यान व्यक्ति की कर्त्तव्य भावना को जागृत करने पर केन्द्रित होना चाहिए।5

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

वे पूँजीवाद व समाजवाद दोनों की साझी आलोचना करते हुए कहते है कि, "वर्तमान साम्यवाद एवं पूँजीवाद दोनों में स्वामित्व के स्वरूप का अन्तर छोड़ दिया जाय तो, इनमें कोई फर्क नही है। अतः दोनों में ही व्यक्ति के विकास की कोई सुविधा नहीं है।6 दोनों ही अपनी केन्द्रित सत्ता की सुरक्षा हेतु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राज्य पर अपना अधिकार जमाते है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि, ".....पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पहले आर्थिक क्षेत्र पर आधिपत्य जमाकर फिर परोक्ष रूप से राज्य पर अधिकार करती है तो समाजवाद राज्य को सम्पूर्ण उत्पादनों का स्वामी बना देता है। दोनों व्यवस्थाएं व्यक्ति के प्रजातंत्रीय अधिकार एवं उसके स्वस्थ विकास के प्रतिकूल है।''7

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि हमारा आर्थिक कार्यक्रम लोकतंत्र का संरक्षक एवं पोषक होना चाहिए। राष्ट्र की शासन व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को सहभागी बनाना लोकतंत्र का ध्येय सूत्र है। यद्यपि मनुष्य का कोई भी निर्णय एकांगी नहीं होता। इसलिए स्वतंत्रता हेतु आवश्यक है कि वह आर्थिक दृष्टि से भी स्वतंत्र हो। क्योंकि वही राष्ट्र सफल एवं उत्तम है, जहाँ लोकतांत्रिक प्रणाली है, वे लोकतंत्र को केवल राजनीतिक जीवन का आयाम नहीं मानते। आर्थिक लोकतंत्र के अभाव में राजनीतिक लोकतंत्र अकल्पनीय है। उनका मानना है कि, "प्रत्येक को वोट' जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निष्कर्ष है, वैसे ही 'प्रत्येक को काम' आर्थिक प्रजातंत्र का मापदण्ड है।''8 प्रत्येक हाथ को काम की अवधारणा में उन्होंने आर्थिक लोकतंत्र की प्राथमिक इकाई को समृद्ध, सबल और सशक्त बनाने पर विशेष बल दिया। वे प्रत्येक गाँव के कृषक, लुहार, बढ़ई, जुलाहा, नाई, धोबी और चर्मकार आदि प्राथमिक इकाइयों के अतिरिक्त गाँव में लगाये जाने योग्य कुटीर उद्योगों की समृद्धि के प्रबल पोषक है। अतः 'प्रत्येक को काम' का अधिकार मिलना चाहिए। वे कहते है कि "काम प्रथम तो जीविकोंपार्जनीय हो तथा दूसरे व्यक्ति को उसे चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता हो। यदि काम के बदले उसे राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग नही मिलता, तो उसके काम की गिनती 'बेगार' में होगी। इस दृष्टि से न्यूनतम वेतन, न्यायोचित वितरण तथा किसी न किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आवश्यक हो जाती है।''9

यंत्रचालित औद्योगीकरण की मर्यादा को स्पष्ट करते हुए उपाध्याय जी एक समीकरण प्रस्तुत कर गणितीय सूत्र द्वारा इस प्रकार व्याख्यायित करते हैं –

'ज × क × य= इ'

यहाँ 'ज' जन का परिचायक है, 'क' कर्म की अवस्था व व्यवस्था का, 'य' यंत्र का तथा 'इ' समाज की प्रभावी इच्छा या इच्छित संकल्प का द्योतक है। 'इ' तथा 'ज' तो सुनिश्चित है। 'इ' और 'ज' के अनुपात में 'क' तथा 'य' को सुनिष्चित करना है, लेकिन औद्योगीकरण लक्ष्य होने पर 'य' सबको नियंत्रित करता है। 'य' के अनुपात में जन की छँटनी होती है। 'य' के अनुपात में 'इ' को भी यंत्रों के अति उत्पादन के अनुसार करना पड़ता है, जोकि सर्वथा अवांछनीय है। 'ज' की छँटनी कर देने वाली कोई भी अर्थव्यवस्था अलोकतांत्रिक है। 'इ' को नियंत्रित करने वाली अर्थव्यवस्था तानाशाही है। अतः 'ज' तथा 'इ' को नियंत्रण में 'क' तथा 'य' को नियोजन होना चाहिए। वही लोकतांत्रिक एवं मानवीय अर्थव्यवस्था कही जा सकती है।10

यद्यपि बड़े उद्योग उत्पादन के केन्द्रीकरण के कारण तथा मांग व पूर्ति पर यंत्रवाद हावी हो जाने के कारण तानाशाही प्रवृत्ति वाले एवं अमानवीय हो जाते है। अतः उपाध्याय जी का मानना है कि "आर्थिक एवं अन्य कारणों के अतिरिक्त हमें अपने आधारभूत लक्ष्यों का भी विचार करना होगा। विकेन्द्रीकरण तथा समान वितरण हमने सिद्धांत रूप में स्वीकार किये है। बड़े उद्योग इन दोनों के विरोध में जाते है। उनसे समाज में शक्ति के केन्द्रीकरण एवं विषमता की प्रवृत्ति बढ़ती है।11

विदेशी पूँजी का राजनैतिक के अलावा आर्थिक प्रभाव भी अशुभ ही होते है। विदेशी का विनियोग स्वदेशी श्रम का शोषण करता है ..... पूँजीवाद के सभी दोषों का हमारे समाज में प्रवेश हमारी सामाजिक संस्कृति के लिए बहुत विषैला होगा।''12

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी मनुष्य तत्व पर मशीन के हावी हो जाने के प्रबल विरोधी है। उनका मानना है कि "मशीन न तो मनुष्य का शत्रु है न मित्र। वह एक साधन है तथा उसकी उपादेयता समाज की अनेक शक्तियों की क्रिया–प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है।''13 पुनः उपाध्याय जी कहते है कि "हमारी मशीन हमारी आर्थिक आवश्यकताओं के अनुकूल ही नही; अपितु हमारे सांस्कृतिक एवं राजनैतिक जीवनमूल्यों की पोषक नहीं तो कम–से–कम अविरोधी अवश्य होनी चाहिए।'' इस प्रकार वे न तो मशीन के भक्त ही है, न विरोधी। वे मशीनों को समाज एवं अर्थव्यवस्था पर हावी नहीं होने देना चाहते है।

अर्थव्यवस्था का विकेन्द्रिकृत होना सामाजिक न्याय, समृद्धि एवं स्वालम्बन हेतु अत्यंत आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था हेतु राजनीतिक विकेन्द्रीकरण पूर्व शर्त स्वरूप परिलक्षित होती है। इस हेतु वे स्वालम्बी व समर्थ ग्राम पंचायतों व जनपद व्यवस्था के पक्षधर है। अतः आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना हेतु विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था ही भारतीय परिस्थितियों में हमारे लिए उपादेय है। इस

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

सन्दर्भ में पण्डित जी का मानना है कि ''अर्थव्यवस्था को विकेन्द्रिकृत होना चाहिए। इसके लिए स्वयंसेवी क्षेत्र को खड़ा करना होगा। स्वयंसेवी क्षेत्र जितना बड़ा होगा उतना ही मनुष्य आगे बढ़ेगा, मनुष्य का विकास हो सकेगा, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का विचार कर सकेगा। प्रत्येक मनुष्य की व्यक्तिशः आवश्यकताओं और विशिष्टताओं का विचार करके उसे काम देने पर उसके गुणों का विकास हो सकता है। यह विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था भारत ही संसार को दे सकता है। ..... आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्रता समाप्त हुई, तो राजनीतिक क्षेत्र में भी समाप्त हो जाती है। समाजवाद और प्रजातंत्र साथ–साथ नही चल सकते। सच्चे प्रजातंत्र का आधार आर्थिक विकेन्द्रीकरण ही हो सकता है।''14 विकेन्द्रीकरण को पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी अर्थव्यवस्था का केन्द्रीय मुद्दा मानते है। विकेन्द्रीकरण से ही हम सामाजिक न्याय, स्वदेशी व स्वावलम्बन को प्राप्त कर सकते है। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के पक्ष में पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने महात्मा गांधी को उद्धृत करते हुए लिखते है कि "मैं विशाल उत्पादन चाहता हूँ पर विशाल जन समूह द्वारा।''15

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ग्रामीण विकास से ही भारत के विकास को सम्भव मानते है। उनका कहना है कि, "आर्थिक योजनाओं तथा प्रगति का माप समाज के ऊपर की सीढ़ी पर पहुँचे व्यक्ति से नही, बल्कि सबसे नीचे के स्तर पर विद्यमान व्यक्ति से होगा। हमारी भावना और सिद्धान्त है कि वह मैले–कुचैले, अनपढ़, मूर्ख लोग हमारे नारायण है। हमें इनकी पूजा करनी है। यह हमारा सामाजिक एवं मानव धर्म है। जिस दिन इनको पक्कें, सुन्दर, स्वच्छ घर बनाकर देंगे, जिस दिन हम इनके हाथ और पाँव की विवाइयों को भरेंगे और जिस दिन इनको उद्योगों–धंधों की शिक्षा देकर इनकी आय को ऊँचा उठा देंगे, उस दिन हमारा भ्रातृभाव व्यक्त होगा। ग्रामों में जहाँ समय अचल खड़ा है, जहाँ माता और पिता अपने बच्चों के भविष्य को बनाने में असमर्थ है, वहाँ जब तक हम आशा और पुरूषार्थ का संदेश नहीं पहुँचा पायेंगे, तब तक हम राष्ट्र के चैतन्य को जागृत नहीं कर सकेंगे। हमारी श्रद्धा का केन्द्र आराध्य और उपास्य, हमारे पराक्रम और प्रयत्न का उपकरण तथा उपलब्धियों का मानदण्ड वह मानव होगा जो आज शब्दषः अनिकेत और अपरिग्रही है।''16

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह नितांत स्पष्ट है कि पं0 दीनदयाल उपाध्याय का अर्थ चिंतन समग्रतावादी है। मनुष्य, श्रम और मषीन इन तीनों का समन्वय ही अर्थव्यवस्था का उद्देश्य है। अर्थव्यवस्था के जिस स्वरूप में यह समन्वय नहीं है उसमें समन्वयहीनता की फलश्रुति विषमता होगी। जो अर्थनीति इन परिणामों से ही अपने दर्शन का सूत्र संचालित करती है, वह तात्कालिक रूप में इन परिणामों को भले ही दूर कर दे, किन्तु वह व्यवस्था का मौलिक शोधन, परिष्करण एवं सम्वर्धन नहीं कर सकती। इस हेतु तो कारणों से ही चल कर अग्रेतर अभिवृद्धि करना होगा तथा इन परिणामों का नष्ट करने का उपाय करना होगा।17 निपट आर्थिक दृष्टि से ही सम्पूर्ण मानवजीवन को देखने के वे विरोधी है। मानवीय, सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि से उनका अर्थ चिंतन आदर्शवादी है। अतः पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के आर्थिक विचार मानव प्रधान एवं समाजपरक हैं, साथ ही उनका सांस्कृतिक अर्थशास्त्र आत्मरंजक भी है और बुद्धिगम्य भी।18

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पं0 दीनदयाल उपाध्यायः विचार दर्शन, शरत अनन्त कुलकर्णी, खण्ड–4, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ0–14
2. दीनदयाल उपाध्यायः भारतीय अर्थनीतिः विकास की एक दिशाः राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ 1958, पृ0–4
3. पाञ्चजन्य, 12 दिसम्बर, 1995, पृ0–11
4. दीनदयाल उपाध्यायः भारतीय अर्थनीति; विकास की एक दिशा, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, 1958, पृ0–20
5. वही, पृ0–90
6. वही, पृ0–115
7. वही, पृ0–22
8. वही, पृ0–19
9. वही, पृ0–19
10. दीनदयाल उपाध्याय, राष्ट्र चिंतन, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2014, पृ0 74–75
11. वही, पृ0–118
12. वही, पृ0–82–83
13. वही, पृ0–77–78
14. एकात्म मानवदर्शनः पं0 दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन, विनायक बासुदेव नेने, खण्ड–2, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0–64
15. दीनदयाल उपाध्याय, 25 जुलाई 1967, बौद्धिक वर्ग पंजिका क्र0 30, पृ0–2
16. दीनदयाल उपाध्याय, 27 जून 1962, बौद्धिक वर्ग पंजिका, दिल्ली, क्र0 29, पृ0–131
17. स्मारिका, 'समग्र दृष्टि': प्रकाशक पं0 दीनदयाल उपाध्याय जन्मभूमि स्मारक समिति, नगला चन्द्रभान, 8 जनवरी, 1991, पौष सप्तमी, वि0सं0 2048, पृ0–4

*****